क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल

National Council of Educational Research and Training

PAC 16.19

Programme Report

Year-2018-2019

Collection and Publication of Children-songs, play-songs and folksongs of Tribal languages of Gujarat, DNH, DIU & Daman

गुजरात, दादरा और नगर हवेली एवं दीव-दमन की जनजातीय भाषाओं में बाल लोकगीतों, खेलगीतों आदि का संकलन एवं प्रकाशन

कार्यक्रम समन्वयक

डॉ. सुरेश मकवाना

सहा.प्राध्यापक (गुजराती)

भाषा एवं सा.शि.विभाग,(DESSH)

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भोपाल-४६२०१३

प्राचार्य संदेश

भारतीय संस्कृति की एक खासियत है – लगातार तेज़ी से हो रहे परिवर्तनों के बावजूद अनुसूचित जनजातियों के जीवन संस्कृति एवं सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, भाषायी भिन्नताओं का बचे रहना। सन् 2001 की जनसंख्या के मतानुसार भारत की जनसंख्या 8.1 प्रतिशत आदिवासी अस्तित्व में है जो 8.36 करोड़ लगभग हैं। मानव विज्ञानियों ने आदिवासियों के सांस्कृतिक विकास के विभिन्न स्तरों पर विभाजित किया हैं। जिसमें जनजातियों की विविधताओं के बारे में व्यापक जानकारी मिलती हैं। लेकिन वर्तमान में इस जनजातियों को अवशोषण, उपनिवेशवाद, का सामाना करना पड़ रहा हैं, जिसमें भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक अस्तित्व के सामने प्रश्नार्थ खड़ा किया हैं। भाषाई लोक साहित्य, सांस्कृतिक धरोहर एवं जनजातीय जीवनमूल्यों का ह्रास हो रहा है। वैश्विक पूंजीवादी एवं आधुनिक जीवन शैली से जनजातीय भाषाई गौरव बहुत जल्दी विछिन्न हो रहा हैं। इस परिवेश में उन्हें संजोया जाये यह अति आवश्यक हैं।

जनजातियों के शैक्षिक विकास हेतु अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं किन्तु उसका प्रतिफल उचित रूप से नहीं मिल रहा हैं। एन.सी.ई.आर.टी. भारत के शिक्षण क्षेत्र में प्रभावशाली भूमिका निभा रहा है। प्रारंभिक स्तर से उच्च माध्यमिक स्तर तक के पाठ्यक्रम, संरचना पाठ्यपुस्तकों, संदर्भ साहित्य एवं प्रशिक्षण, विकास अनुसंधान एवं विस्तार हेतु सतत कामशील हैं। क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल भी निरंतर प्रयत्नशील है कि पश्चिम भारत के सभी राज्यों मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, गुजरात, गोआ और दादरा एवं नगर हवेली तथा दीव–दमन के शैक्षिक मार्गदर्शन एवं गुणवत्तायुक्त शिक्षण के लिए प्रयत्नशील है।

गुजरात के जनजातीय क्षेत्रों में बोली जाने वाली अनेक आदिवासी भाषा में जैसे – भीली गावीत, राठवी, चौधरी, वसावी, गरासीया, डुंगरी, गरासीय, कोंकणा, डुंगरीभीली, डांगी.....आदि भाषाओं में व्याप्त बालगीतों (Folklore) का संकलन एवं प्रकाशन किया जा रहा है, जो काफी प्रशंसनीय एवं आवश्यक कार्य है। आज के समय की मांग है क्योंकि यह सांस्कृतिक–भाषीय संपत्ति अब मृतप्रायः अवस्था में आ गई हैं अतः अगर अगले कुछ वर्षों में उसे संरक्षित एवं डॉक्यूमेंटेशन नहीं किया गया तो वह अस्तित्वविहीन होने की कगार पर है। कार्यक्रम समन्वयक डॉ. सुरेश मकवाना गुजरात की आदिवासी भाषाओं की चिंता के साथ एक प्रेरक कार्य कर रहे है। गुजरात के सभी भाषाओं के तजज्ञ विद्वानों को साधुवाद, जिन्होंने अपना शोध अनुसंधान का अनुभव इस विकास कार्य में लगाया है। यह कार्य भावी पीढ़ी के लिए उपयोग होगा एवं नूतन शोध करने वालों को प्रेरक बनायेगा।

शुभकामनाओं के साथ.....

प्रो. नित्यानंद प्रधान

अनुक्रम

क्रं.	विवरण	
1	प्राचार्य संदेश	प्रो. नित्यानंद प्रधान
2	भूमिका	डॉ. सुरेश मकवाना
3	कार्यक्रम समीक्षा	डॉ. सुरेश मकवाना
	ચૌધરી ભાષાનાં આદિગીતો	રોશન પી. ચૌધરી
	દેહવાલી (વસાવા)	ગાયત્રી આર. વસાવા
	ઢોડિયા ભાષાનાં આદિગીતો	અરવિંદ પટેલ
	ભીલીભાષાનાં આદિગીતો	મૌલિક શ્રોત્રિય
	ગરાસિયા ભાષાનાં આદિગીતો	નવજી સંધોસી
	ગામીત ભાષાના આદિગીતો	ડૉ. ઉમેશ આર ગામીત
	રાઠવી ભાષાનાં આદિગીતો	ડૉ. રાજેશ રાઠવા
4	सलाहकार–स्त्रोत व्यक्तियों एवं संपादक मंडल की सूची	
5	फोटो गैलरी	

भूमिका

घर में बच्चें का जन्म अपार खुशी का अवसर होता है। एक स्त्री के लिये यह अवसर 'मातृत्व' पाने का होता है और शिशु का नये जगत में आने का पहला स्पर्श बच्चें को माँ का ही मिलता है। यह स्पर्श से माँ को पहचानने लगता है। उसे भूख लगती है वह रोने लगता है। माँ उसे दूध पिलाकर चुप कर देती है, सुला देती है। थपकियाँ देती है, कुछ गुनगुनाती है और लोरी का जन्म होता है। नवजात शिशु प्रायः अठारह से बीस घण्टे सोता है ओर एक और गीत का जन्म होता है। जिसे झूला या 'हालरड़ा' गीत कहते है। ऐसे गीतों में शब्द कम होते है और ध्वनियाँ अधिक होती है। जिसे बालक सोते हुए भी 'स्मृति–भाषा' में पकड़ता है और नींद में ही वह हँसता और रोता है। डरता चौकता है। उसे लोक में 'बेमाँता' (भाग्य लिखने वाली माता) सपने में शिशु के साथ खेलना कहते है। यह एक जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिसमें से हर बालक को गुज़रना होता है। कहते है बच्चे के शरीर में सेल्स नींद में अधिक तीव्रता से बढ़ते है। लोरी अथवा झूला गीत या माँ की मीठी थपकियाँ उसे सोने में अधिक सहायता करती है और कुछ शब्दों की ध्वनियाँ बालक के मस्तिष्क में जमने लगती है। यहीं से बाली या भाषा की नीव पड़ती है। शिशु लोरी और माँ के अटपटे शब्दों को पकड़ने की कोशिश करता है। परंपरा में लोरी अथवा बोली गीतों की लंबी और समृद्ध श्रृंखला रही है। यह श्रृंखला हर अँचल में मिलती है। जनजाती अँचलों में लोक से पहले आदिकाल से बालगीतों का उनकी बोलियों में साक्ष्य मिलता है।

गुजरात की जानजातियों में खासकर चौधरी, गामित, वसावा, ढ़ोडिया, डुंगरी गरासिया, पंचमहाली भीली राठवाओं में प्रचलित लोरीयों और अन्य खेलगीत, बालगीत, ऋतु संबंधी गीतों, नृत्य गीतों, त्योहारगीतों, कहावतों, पहेलियों का पहली बार संकलन–अनुवाद क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, श्यामला हिल्स, भोपाल द्वारा किया गया। यह कार्य डॉ. राजेश राठवा के निर्देशन में उनकी टीम ने दीव–दमन नगर हवेली और गुजरात के अन्य जनजातीय हिस्सों में किया गया। जिनमें लोरी, हालरडां, खेलगीत, वार्तागीत, ऋतुगीत, देव–पूजन गीत, उत्सवगीत, नृत्यगीत, युवा मनोभाव के गीत और लोकोक्ति प्रमुख है। मूल गीतों का हिन्दी अनुवाद भी किया गया है। जो एक रचनात्म्क काम है। बच्चों और बड़ो के लिये वह उपयोगी है।

बालगीत क्या है? प्रकृति के आनंद की अभिव्यक्ति का नाम बालगीत हैं। बोली की परंपरा में बच्चों के लोरी गीत, खेलगीत, ऋतुगीत, बहुत मिलत है, लेकिन बोलियों की रचना में रचित गीत नहीं मिलते है। बोलियों के रचनाकारों को यह दायित्व संभालना चाहिए, ताकि बोलियों के नव सृजन का भण्डार भी भरता रहे। मुझे इस पुस्तक की भूमिका लिखने का सौभाग्य दिया। मैं संस्थान के प्राचार्य प्रो. नित्यानंद प्रधान और डॉ. सुरेश मकवाना का बहुत आभारी हूँ।

NCERT के आधार पत्र 3.1 यह कहता है कि – जनजातियों के छात्रों की शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए उनकी खुद की भाषा एवं संस्कृति के पाठ्यक्रम में होना आवश्यक है। उनकी मातृभाषा एवं संस्कृति को नज़रअंदाज़ करके शैक्षिक विकास नहीं हो सकेगा।

नई शिक्षा व्यवस्था में जनजातीय भाषाओं एवं लोकसाहित्य को महत्व देने और उसे अपनी भाषाओं के बारे में सबसे ज़्यादा सोचना चाहिए। भाषा के विषय में सोचना यानि अपने जीवन–ज़मीन के विषय में सोचना होता है।

इसलिए उनको सामान्य शिक्षा में लाने के लिए बहुभाषीय शिक्षण व्यवस्था अमल में लायी जा सकती हैं। खास करके प्राथमिक स्तर पर जनजातीय क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा या तो राज्यभाषा में ही पाठ्यपुस्तकों की व्यवस्था की गई है। जनजातीय विद्यार्थियों के लिए उनके अपने भाषा वैविध्य एवं समृद्ध लोक परंपरा का संकलन एवं प्रकाशन करने का उपक्रम इस कार्यक्रम में किया गया है।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत गुजरात, दीव–दमन एवं दादरा नगर हवेली के करीब 15 जिलों में फैली हुई जनजातीय मातृभाषा (डायलेक्ट) के बालगीतों, खेलगीतों एवं ऋतु संबंधी लोकगीतों को सहजने का कार्य निर्धारित किया गया है।

उद्देश्य –

- गुजरात, दादरा नगर हवेली के जनजातीय भाषाओं का बाल लोकगीतों का संकलन करना।
- जनजातीय क्षेत्रों की सृजनात्मक धरोहरों को प्रोत्साहन देना एवं सहजना।
- जनजातीय क्षेत्रों के साहित्य का संकलन एवं प्रकाशन करना।
- प्राप्त साहित्य का संपादन करके रिकॉर्डिंग एवं प्रकाशन करना।

क्षेत्र – गुजरात राज्य स्थित अनुसूचित क्षेत्रों की भाषाएँ – भीली, भील–गरासीया, डुंगरी गरासीय, मेंवासी भील, रेवल भील, तडवी, भीलाला, पावरां, वसावा, देहवाली, चौधरी, तेतरीयां, वलवी, डोलीया, दुबला, हलपति, गामित, गावीत, मावची, पाडवी, राठवा, कोली, कोलचा, नायकडा, पारगी, पंचमहाली भीली आदि भाषाओं में बाल लोकगीतों का संकलन किया गया है।

क्षेत्रकार्य आयोजन –

- उपरोक्त भाषाओं से प्रारूप द्वारा।
- फील्डवर्क, भाषाओं के जानकारों से साक्षात्कार।
- जनजातीय भाषाओं के बालगीतों का संकलन (मौखिक, रिकॉर्डिंग आदि)।

कार्य – पाँच दिवसीय वर्कशॉप, आयोजन कार्यशाला। क्षेत्रकार्य, वर्कशॉप कम्पाईल मटेरियल, साहित्य के संपादन के लिए वर्कशॉप किया गया।

संदर्भ – आधार पत्र–जनजातीय विद्यार्थियों की वर्तमान शिक्षा, एन.सी.एफ–2005, सेन्सन रिपोर्ट, आदिलोक, बोल, ढोल, लखारा।

संविधान में निहित प्रावधानों का वर्गन, जनजातीय भाषा – भारतीय संविधान की धारा 15(4), 45 और 46 में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए शिक्षा मुहैया कराने

हेतु राज्यों की प्रतिबद्धता की बात की गई है। शिक्षा का अधिकार 2009 एवं संविधान की धारा 45 के अनुसार 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दें। यह धारा अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या की साक्षरता दरों में ज़मीन आसमान का अंतर है (पी.7–आधारपत्र 3.1) सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ करने के बाद भी उनकी शिक्षण साक्षरता में कमी पाई गई हैं। हमने जनजातीय भाषाओं में व्याप्त बाल लोकगीतों का संकलन करके छात्र–छात्राएँ, शिक्षकों एवं समुदाय द्वारा शिक्षण अधिगम के साथ जोड़कर शोधकार्य करना आवश्यक समझा है।

भाषा अभिव्यक्ति हमारी नैतिकता, सृजनशीलता एवं संप्रेषण को निर्धारित करती हैं। संप्रेषण के अर्थ में हमारी विविधता और उससे जुड़ा वैशिष्ट्य इसी से प्रकट होता है। भारतीय अधिनियम 1963 की धारा 4 (1) के तहत गठित संसदीय 17. ने यह सिफारिश की हिन्दी एवं अंग्रेज़ी भाषा के संदर्भ में साहित्य का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद सुनिश्चित करें अंग्रेज़ी में यह भी कहा गया है कि देश के एवं राज्यों के बौद्धिक विकास के लिए प्राप्त संदर्भ सामग्री का भारतीय भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए, जिसके लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग द्वारा यह कार्य अपने अधीनष्ठ संगठनों से करवाया जाये। छात्रवर्ग एवं आम आदमी के लिए स्तरीय पुस्तकें, संदर्भ ग्रंथ और बच्चों के लिए संपूरक साहित्य का सृजन किया जाए तथा प्रचार प्रसार किया जाए। इसके अंतर्गत संविधान के अनुच्छेद 351 में निर्देष्ट भारत की एक स्वीकृत निश्चित भाषाओं में इसका अनुवाद होना चाहिए। इस प्रतिवेदन उपरांत प्रधानमंत्री मा. नरेन्द्र मोदी जी द्वारा विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल में कहे वाक्य भारतीय भाषाओं को हिन्दी के साथ जोड़ना होगा, यह अनुवाद प्रक्रिया से ही संभव हो पाएगा। एक शब्दशिल्पी ही है जो अपनी रचनाधर्मिता से राष्ट्र की विविधता को सेतु बनाकर जोड़ने का कार्य करता है। संवाद की नई परिभाषा गढ़ता है। उसे प्रवाहमान बनाता है। इस प्रवाह में जनजातीय भाषाओं में बाल संदर्भ सामग्री जैसे बालगीतों, खेलगीतों एवं ऋतु संबंधी गीतों को संकलन करने का प्रयास है।

सं. 1961 की जनगणना के अनुसार भारत 1652 भाषाएँ थी। आज देश में तकरीबन 243 भाषाएँ बचकर रह गई हैं। मतलब यह हुआ कि पिछले चार दशकों में भारत 1418 भाषाएँ खो चुका हैं। परंतु गुजरात स्थित भाषा संशोधन व प्रकाशन केन्द्र द्वारा किए गए भाषा सर्वेक्षण में 2008 का खतरे में पड़ी भाषाओं का विश्व–मानचित्र देखते है, जिसके अनुसार भारत की 196 भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है तो पाते है कि भाषाई, जातीय व सांस्कृतिक घृणा, उपेक्षा और भेदभाव की यह प्रक्रिया निर्बाध रूप से जारी हे। यूनेस्को के एक अध्ययन के मुताबिक हिमालयी काज्यों की करीब 44 भाषाएँ गायब हो रही है, जबकि उड़ीसा, झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल में ऐसी करीब 42 भाषाएँ विलुप्त हो रही है। भाषाओं का इतनी तेज़ी से अदृश्य हो जाना सामाजिक विविधता के लिए भी चिंता की बात है।

डॉ. सुरेश मकवाना
कार्यक्रम समन्वयक

कार्यक्रम की समीक्षा

डॉ. सुरेश मकवाना

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रेरित, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल द्वारा संचालित इस विकासात्मक कार्यक्रम में गुजरात राज्य, दीव–दमन, दादरा नगर हवेली में निवासरत जनजातीय भाषाओं में व्याप्त बाल लोकगीतों का संकलन एवं प्रकाशन करना था। इस कार्यक्रम में क्षेत्रकार्य द्वारा संकलन करना अनिवार्य था, चूंकि हमें वास्तव में प्राप्त लोकगीतों का चयन करना था। अतः गुजरात राज्य के तेरह जिलों से लगभग 25 लोकबोलियों के गीत का और दादरा नगर हवेली एवं दमन–दीव में व्याप्त करीब छह आदिवासी भाषाओं का लोकरंजन साहित्य संकलित किया जाना था। यह अपने आप में एक विराट कार्य था।

कार्यक्रम की रूपरेखा और क्षेत्रकार्य के मार्गदर्शन हेतु हमने एक कार्यशाला का आयोजन किया था। जिसमें गुजरात से आये विविध भाषाओं के विद्वानों ने अपने–अपने क्षेत्र में हो चुके और संभावनाओं पर बात की। साथ ही लोकगीतों में हो रहे परिवर्तनों के साथ मूल भाषाओं में हो रहे परिवर्तनों के साथ मूल भाषाओं में रहें विविध प्रकार के गीतों के चयन में आनेवाली समस्याओं पर भी ध्यान दिया गया। डॉ. राघवजी माधर, श्री अरविंद पटेल, श्री मौलिक क्षोत्रिय, डॉ. जितेन्द्र वसावा, और हमारे क्षेत्रकार्य के लिए प्रोजेक्ट फैलो डॉ. राजेश राठवा तथा श्री बसंत निरगुणे, भोपाल ने तीन दिनों की कार्यशाला में एक सरल रूपरेखा का निर्माण किया। जिससे क्षेत्रकार्य में सरलता के साथ कार्य किया जा सके।

कार्यक्रम के द्वितीय स्तर पर डॉ. राजेश राठवा ने कुल छह बार गुजरात राज्य के जनजातीय बहुल क्षेत्रों का दौरा किया जिसमें कुल दस (10) जनजातीय भाषाएँ और 12 जिलों का भ्रमण किया। विद्यालयों और शोधकारों तथा शिक्षकों से मिलकर लोकगीतों के जानकार एवं वांशिक परंपरा के धरोहर व्यक्तियों से मुलाकात कर के रिकार्डिंग, वीडियोग्राफी एवं लेखन द्वारा करीब पंद्रह सौ से अधिक लोकगीतों का पांच माह में संकलन किया। जिसमें भीली, चौधरा, गामित, वसावा, राठवी, गारसिया, ढोड़िया, डुगरी भीली, कोंकणी, तड़वी आदि भाषाओं के लोकगीत थे। यह एक जटिल कार्य था क्योंकि लोकगीतों का संग्रह कोई एक जगह या संस्थान के पास नहीं था किंतु जनमानस के पास जाकर लेना था।

कार्यक्रम के तृतीय स्तर पर प्राप्त साहित्य सामग्री का लोकगीतों का विश्लेषण एवं चयन करना था। संस्थान में एक पांच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। उसमें भिन्न–भिन्न जनजातीय भाषाओं के जानकार एवं शोधकर्ता विद्वानों को आमंत्रित किया गया था। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अन्य भाषा के लोकगीतों को समझ सके यह मुमकिन था। यह कश्मकश, चर्चा एवं संवाद द्वारा श्रेष्ठ बालगीतों का संकलन हुआ। उनका शब्दार्थ, भावार्थ, स्त्रोत एवं विशिष्टताओं के बारे में संक्षिप्त लेखन किया। इस प्रकार करीब दस भाषाओं के दौ सौ से ज़्यादा लोकगीतों का संकलन कर बहुभाषित तर्ज पर एक पुस्तकार में प्रकाशित करने का अवसर हमें प्राप्त हो रहा है। यह हमारे लिए गौरव की बात है।

गुजरात के आदिवासी समुदायों का शैक्षिक परिदृश्य एवं संभावना

1. भूमिका

1.1. शोध के उद्‌देश्य

1.2. क्षेत्र एवं जनजातीय परिचय

1.3. शैक्षिक–स्तर का परिदृश्य

1.4. जनजातियों में वंचितता का परिदृश्य

1.5. सुझाव एवं निष्कर्ष

1.6. सरकारी योजनाएं एवं सहायता

1.7. सुझाव एवं निष्कर्ष

भूमिका – भारत में आदिवासी समाज सामान्य जनसामान्य का समवायी माना गया है किन्तु शहरी एवं उच्च स्तर के लोगों ने आज तक आदिवासीयों का भिन्न रूप से देखा है। आर्थिक एवं सामाजिक रूप से तथा शैक्षिक रूप से जनजातियों का पिछड़ापन बना रहा है। गुजरात भारत में आदिवासी जनसंख्या के मामले में पांचवे स्थान पर है। यह एक विकसित प्रदेश है किन्तु आदिवासियों की स्थिति उतनी बेहतर नहीं है जितनी अन्य समाजों का है। समान्य समाजों की तुलना में आदिवासी समाज के सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्तर का अभ्यास कई विद्वानों ने किया है। जिसमें रूथ बेनेडिक्टस, मार्गारेट मेड और मिलिनोत्सकी जैसे एन्थ्रोपोलोजिस्ट प्रमुख है। (1) प्रो. गणेश देवी ने गुजरात के आदिवासी समाज के सामाजिक परिदृश्य पर गहरा अध्ययन किया है। इन शोधों में यह पाया गया है कि आदिवासी समाज भी सामान्य धारा व समाजों में स्थान रख सकतें है किन्तु उनके लिए पर्याप्त प्रयास नहीं किये गये। मूलतः वन एवं ग्राम्य परिवेश में रहने के कारण विकास के स्तर पर वह पिछड़ गए है। प्रकृति एवं पर्यावरण के काफी करीब रहने वाली आदिवासी जनजाति शारीरिक एवं मानसिक रूप से अन्य प्रजातियों से मज़बूत मनोबलवाली है। उनकी अपनी संस्कृति है। कला है। कृषि एवं पशुपालन की रीत है। वर्तमान में सरकारी योजनाएं उनके विकास हेतु बनाई गई है। शिक्षा पाकर नई पीढ़ी शासकीय एवं निजी संस्थानों में कार्यरत है और आर्थिक रूप से संपन्न बनती जा रही है। गुजरात, मध्यप्रदेश एवं राज्यस्थान के त्रिभेट पर स्थित दाहोद से पू. डक्कर बापा द्वारा आदिवासियों में सामाजिक एवं शैक्षिक जागृति लाने का प्रयास 'भील सेवा मंडल' का स्थापना करने किया। वह आज भी अनवरत अपने कार्य को मूर्त रूप दे रहा है।

1.1. शोध पत्र के उद्‌देश्य –

- आदिवासियों की सामाजिक–आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति का आकलन करना।
- वर्तमान में गुजरात के साक्षरता प्रतिशत एवं आदिवासी समाज की शैक्षिक स्थिति की तुलना करना।
- उत्कृष्ट जीवन हेतु आनेवाली समस्याओं का अध्ययन करना।

- आदिवासी समाज के बेहतर भविष्य के लिए सुझाव देना।

1.2. गुजरात में आदिवासी बहुत क्षेत्रों का ऐतिहासिक परिदृश्य – जनजातीय परंपराओं में अचल संपत्ति का महत्व अधिक नहीं था। पान–पत्तों की झोंपड़ी अथवा मिट्टी से बनाएं हुए लकड़ी के घर उनके निवास के स्थान है। ईमानदारी एवं मेहनतकश जीवन के धनी आदिवासी अपने भौतिक सुविधाओं के लिए ज़्यादा चितिंत नहीं रहते। बढ़ती जनसंख्या एवं वनो की कमी तथा शहरीकरण के प्रभाव ने आदिवासियों की इस परंपरा में परिवर्तन तय कर लिया है। निवास क्षेत्र के आधार पर उनके खान–पान, रहन–सहन एवं वेश–भूषा में भी भिन्नता पाई जाती है। गुजरात मे मुख्यतः, भील, भीलाला, तड़वी, रायका, डांगी, वसावा, गामीत, बैगा, बारैया, अगरिया, जैसी जातिया पाई जाती है। जनजातियों मे से कुछ ने विकसित समाज के साथ जोड़कर अपना विकास वहीं कुछ अभी तक विकास की दौड़ मे पिछड़ रही है। सदियों से जो समाज विभाजन और शोषणपरक मूल्य व्यवस्था के साथ लिए चल रहा है। भारत की तथाकथित आज़ादी के बाद भी आदिवासी समाज का सामाजिक एवं भौगोलिक रूप से अलग रही है। उनका संस्कृतिक जीवन हिन्दु, मुसलमान एवं अन्य धर्म–संप्रदायों से बेहद भिन्न रहा है (आधार पत्र–3.1 NCERT)

गुजरात के आदिवासी प्रारंभ से वनप्रदेशों में रहे है। यहां के रहने वाले लोग बाकी जगत से कई मायनों में अलग दिखाई देते है। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और राज्यस्थान के जनजातीय समाजों का सांस्कृतिक रहन–सहन समान दिखता है। भाषा और प्रदेशकाल में भेद होने के बावजूद उनकी जीवन–शैली प्रायः एकरूप है।

वेरियर एल्विन द्वारा जनजातीय समाजों का इतिहास समझने का शोध प्रकल्प महत्वपूर्ण है। उनकी आदि पहचान को जानने के लिए पुराकल्पनाएं एवं दंतकथाओं में निहित (Myth) का अभ्यास अनिवार्य है। सृष्टि का आरंभ, आदिमानव का संज्ञान, प्रलय एवं पर्यावरण को उसी से जाना जा सकता है। मध्य–पश्चिम भारत में भीलों के लोकसाहित्य में 'आंदारी कोली' जिनका संबंध आज के 'ब्लेक हाल' से मिलता है। (आदिलोक, सप्टे–2011) विज्ञान में पृथ्वी की उत्पत्ति का समय 14 अब्रज वर्ष माना गया है। जनजातीय पुराकथाओं में 'अखण्ड धरती' शब्द प्रयोग हुआ है। नर्मदा, यही सागर आदि नदी की घाटियों में जनजातीयां बसी हुई है। नृ–वंशविज्ञान के आधार पर कहे तो इस देश में हज़ारों वर्षो से जनजातियों का निवास माना गया है प्राचीन भारत के महाभारत और रामायण काल मे भी जनजातीय समाजों का उल्लेख मिलता है।

गुजरात के पूर्वोत्तर में राजस्थान और पूर्व में मध्यप्रदेश तथा मध्यपूर्व में महाराष्ट्र की सीमाओं पर ज़्यादातर जानजातीय समाज रहता है। नर्मदा घाटी को छोड़कर मूलतः सूखे भौगोलिक परिवेश मे रहते है। शिकार, पशुपालन और अंशतः कृषि के साथ मजदूरी कार्य में उनके जीवन की परिधि रचती है। सामाजिक अंशतः कृषि के साथ मजदूरी कार्य में उनके जीवन की परिधि रचती है। सामाजिक परंपराओं में विवाह (मान), बाधा उत्सव, मेलें, होली, चूल मेला, गोल गधड़ो जैसे पारंपारिक त्यौहार एवं सामाजिक उत्सव मनाये जाते है। जनजातियों के विवाह प्रसंग में पुरूष द्वारा कन्या को गहने एवं रूपये देने का चलन आज भी चल रहा है। तो वरपक्ष को

समाज के अन्य लोग 'चांदला' के रूप में रूपये चढ़ाते है। जो ब्याज़ सहित विवाह, धरप्रसंग एवं मान आदि प्रसंगो में वापिस होते है।

- गुजरात के आदिवासियों में शिष्ट भाषा गुजराती का चलन ना के बराबर है। भीली, गोंडवी, राडवी, तउवी, कोंकणी, डांगी आदि बोलीयां बोली जाती है। शिक्षित और शहर के संपर्क में आनेवाले लोग गुजराती, हिन्दी एवं अंग्रज़ी का उपयोग करने लगे है।

- **शैक्षिक परिदृश्य में जनजाति समाज :** भारत में जनजातीय लोगों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है। गुजरात में पांचवे स्थान पर है जहां जनजातियों का निवास है। किसी भी समाज व समुदाय की वास्तविक प्रगति उनकी शिक्षा से संबंधित है। गुजरात के 12 जिलों के 93 तहसीलों में जनजातियों का निवास है। जो निम्नानुसार टेबल में दिखता है (2011 के सेन्सेस)

क्रम नं.	जिला	पुरूष (%)	स्त्री (%)	साक्षरता का प्रमाण (%)
1.	साबरकांठा	87.45	65.29	76.60
2.	बनासकांडा	79.45	52.58	66.39
3.	पंचमठाल	84.07	59.95	72.32
4.	वडोदरा	87.59	74.40	81.21
5.	भरूच	88.80	76.79	83.03
6.	नर्मदा	82.60	63.62	73.29
7.	सुरत	91.05	81.02	86.65
8.	वलसाड़	86.48	74.96	80.94
9.	नवसाटा	90.06	79.30	84.78
10.	दाहोद	72.14	49.02	60.60
11.	आहवा	84.98	68.75	76.80
12.	तापा	76.86	68.75	69.23

गुजरात का कुल साक्षरता प्रतिशत 78.31% है। उसमें आदिवासियों का साक्षरता का प्रमाण 62.50% है (सेन्सस शोध हार्निया 2011) (योजना–January-2016) जिसमे पुरूषों में 71.80% और स्त्रीयों का 53.20% साक्षरता का प्रतिशत है। यहां गुजरात को साक्षरता प्रतिशत के सामने 16.50% का तफावत है एवं 18.60% जेन्डर गये है। यह स्थिति जनजातियों की साक्षरता असमानता की और इगिंत करती है। शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे अथवा प्रयासों के बावजूद आदिवासियों की यह स्थिति चिंताजन्य है।

गुजरात राज्य में शिक्षा में भाषा और माध्यम का प्रश्न काफी गंभीर है। भीली, डांगी एवं कोंकणी, गायित, गौंडव) आदि बोलियों के अध्येता कक्षा एक से ही गुजराती भाषा के पाठ्यपुस्तकों का अभ्यास करते है। जो उनके अध्ययन के लिए अन्याय जैसा है। यही वजह है कि अनुसूचित

जनजातियों के छात्र प्राथमिक से माध्यमिक तक आते–आते विद्यालय छोड़ देते है या उनको मजदूरी के कार्य में जोड़ दिया जाता है। दाह्मेय जैसे जिलों में साक्षरता प्रतिशत 60% लगभग है। यह दर्शाता है कि उनकी शैक्षिक स्थिति ठीक नहीं है। इस टेबिल में देखिए –

क्रमांक	वर्ष	राज्य की जनसंख्या (लाख में)	जनजाति संख्या (लाख में)	राज्य की सामान्य दर (%)	जनजातियों की साक्षरता (%)	साक्षरता का तफावत
1.	1961	206.33	27.54	30.45	11.69	18.76
2.	1971	266.97	37.44	35.79	14.12	21.67
3.	1981	340.86	48.49	43.70	21.14	22.56
4.	1991	413.10	61.62	51.15	69.67	21.48
5.	2001	506.71	74.81	69.14	47.74	21.40
6.	2011	604.79	89.17	78.31	62.50	15.86

योजना भन्यु–2016 से

जनजातियों में वंचितता का परिदृश्य – सामान्य तथा पर्वतों एवं वन्य स्थानों पर निवास करने वाले जनजातीय समुदायों में समाज से एक निश्चित अन्तर रहा है। अपना काम और काज–बाकी बहुत दुनिया से कोई नहीं मोहताज! उनकी अपनी ही एक विशिष्ट ज़िदगी रही है। जनजातीय क्षेत्र और समुदाय दिल्ली से बहनेवाली विकास की हवा से अभी तक भले की अछूतें रहें; किन्तु यह उनके जीवन रस को कभी कम नहीं करा सके। यह एक प्राचीनतम आदि समाज है। रहन–सहन, संस्कृति, भौगोलिक वातावरण, वनों में निवास, शिक्षा एवं व्यवसाय में अनभिज्ञ रहना या शासन द्वारा हसिये पर रखने उनका विकास कई मायनों में अटका हुआ है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक शैक्षिक रूप से उनमें वंचितो का दर्द छुपा हुआ है।

आदिवासियों में मातृत्व सत्ता की जगह पुरूषप्रथा ही देखी गई है। महिलाओं को परिवार एवं घर की ज़िम्मेदारी संभालनी तय है। पुरूष कमाई करता है या नौकरी करता है। अलबत्ता गृहस्थी के साथ जनजातीय महिलाएं पानी–चारा, कृषि–कार्य, लकड़ी काटना, फल–फूल–कंदमूल एकत्र करना जैसे कार्यो में सक्रीय भागीदारी रहती है। लेकिन आज भी जनजातीय कन्या शिक्षा का परिदृश्य धुंधला ही दिख रहा है। हमारी शैक्षिक व्यवस्था में संख्या आधारित ज़रूरतों की पूर्ति नहीं हो पाना भी उनकी सामाजिक पहुंच एक समस्या बन जाती है। भ्रष्टाचार, राजनीतिक संरक्षण, और नौकरशाही के दलदल में फंसे भेदभाव ने भयंकर रूप से आदिवासियों की खराब स्थिति की है। सहायक भूमिका निभानेवाले संस्थान (NGOs) जनजाति समूहों के लिए उचित सुविधाओं के बारे में अनादरपूर्ण एवं संशयवादी धारणाओं को स्थापित करतें है।

जनशिक्षा की गुणवत्ता पाताल के स्तर पर गिर गई है (आधार पत्र–P-22) शिक्षा का सवाँगी विकास के पीछे हटना आदिवासियों की वंचितता में वृद्धि करता है। शैक्षिक असमानता भी गहरा प्रतिकूल प्रभाव है। भौतिक संसाधन की खराब गुणवत्ता, निरूत्साहीन एवं अपर्याप्त शिक्षकों, व्यवहार और शिक्षण–अधिगम सामग्री का अपर्याप्त प्रावधान एवं अनावश्यक एवं अनावश्यक

गुणवत्ता से समझौता एवं आर्थिक–सामाजिक परिस्थितियां जनजातियों को पिछड़ेपन में रहने के लिए मजबूर कर देती है।

योजनाएं एवं सहायता – गुजरात के जनजातीय समुदायों की शैक्षिक स्थिति भारत के अन्य प्रांतों से बेहतर है। अंग्रेज़ युग से सामान्य शिक्षा की शुरूआत के बाद स्त्रिस्ति मिशनरीओं ने शिक्षा के प्रयास किये थे। संविधान की कलम–29, 30, 45 एवं 46 तथा गुजरात राज्य के मार्गदर्शक सिद्धांत 45 के अनुसार राज्य का किसी भी जाति, संप्रदाय एवं समुदाय का बध्या 14 वर्ष तक मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का हकदार है। RTE-2009 में यही बात की गई है। जागृति एवं समय के साथ जनजातीय समुदाय शिक्षा का महत्व समझकर उसे अपनाने लगे है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 में जनजातियों के लिए निम्नानुसार सुझाव दिये थे –

- जनजातीय बहुल क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय खोलना।
- जनजातीय भाषाओं में पाठ्यक्रम एवं अभ्यासक्रम तैयार करना एवं उच्च स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं में समाव्रष्टि करना।
- जनजातीय छात्र–छात्राओं को अपने ही क्षेत्रों में शिक्षा हेतु प्रोत्साहन देना।
- आश्रम शालाएँ, निवासी शालाएं खोलना।
- जनजातीय आवश्यकताओं और जीवन व्यवहार को ध्यान में रखकर शैक्षिक योजनाओं का सृजन करना।

भारत सरकार ने जनजातियों की शिक्षा हेतु विशेष योजनाएं अमली बनाई है। RTE-2009 के तहत शिक्षा का हक प्रदान किया है। प्रमुख योजनाएं निम्नानुसार है –

- प्राथमिक शिक्षा मुफ्त एवं सार्वत्रिक रूप से उपलब्ध करवाना।
- शिष्यवृत्तियां देना। प्राथमिक से पोस्ट मेट्रिक एवं उच्च शिक्षा तक।
- जनजातीय छात्र–छात्राओं के लिए छात्रावास खोले जाना। जो 1989–90 में प्रारंभ की गई है।
- जनजातीय क्षेत्रों आश्रम शालाएं खोलना। यह योजना 1990–91 से अमल में आई है। युक्त में पाठ्यपुस्तक, बेग एवं साइकिलों का वितरण करना।
- राजीव गांधी राष्ट्रीय, शिष्यवृत्ति 2005–6 से शुरू की गई है।
- जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों का रखना 1992–93 से शुरू की गई है। जिसमें 100% ग्रान्ट केन्द्र सरकार द्वारा दी जाती है।
- जनजातीय छात्रों को यूपीएससी या अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए कोचिंग की योजना 2007–08 मे की गई।
- जनजातीय शोध संसाधनों की 13 राज्यों में रचना की गई है उसमें गुजरात भी शामिल है। यह संस्थान जो राज्यों को योजना, विकास एवं मार्गदर्शन में सहायता करते है।

- प्राथमिक विद्यालयों में 'मध्याह्न भोजन योजना' भी एक प्रोत्साहक योजना है। गुजरात में उपरोक्त सभी राष्ट्रीय योजनाओं के साथ राज्य स्तरीय भी कई योजनाएं कार्यरत है। जैसे कन्या शिक्षा हेतु बोन्ड, साइकिल, स्वास्थ्य परीक्षण योजना, बीमा योजनाएं, वनलक्ष्मी योजना आदि कार्यरत है।

इस 2011 की जनसंख्या के अनुसार गुजरात के 12 जिलों में 43 तहसीलों में 'ट्रायबल सबप्लान' के तहत विकास की कई योजनाएं चल रही है।

सुझाव एवं निष्कर्ष – वस्तुतः जनजातीय समुदाय के शैक्षिक एवं सामाजिक विकास के कथित प्रतिमानों को लेकर कोई सजग नहीं है। यहीं कारण है कि अपनी वंचित परिस्थिति से वे कभी बाहर नहीं आ सकें है। रोजी हेतु पलायन, करके मज़दूरी करना आज भी उनका प्रमुख कार्य रहा है। जनजातीय समाज में विकास के लिए शिक्षा में आमुल परिवर्तन करना पड़ेगा। आदिवासी समाज की अपनी ज़रूरतों एवं भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर विकास की संकल्पना तय होनी चाहिए। इसके अभाव में व में जल, जंगल और ज़मीन से काटे जा रहे है। शिक्षा के नाम पर होने वाला खर्च उन तक नहीं पहुंच पाता है। यह हक भी उनसे छीना जा रहा है। कुछ सुझाव इस प्रकार है –

- जनजातीय क्षेत्रों मे रह रहे आदिवासियों में जागृति का अभाव है। छात्रावास, विद्यालय खोल देने से कार्य पूरा नहीं हो जाता। सलाह एवं मार्गदर्शन के केन्द्र खोले जा सकते है।
- जो छात्रावास है वहा भौतिक संसाधनों की कमी है। स्टाफ अधूरा है। आरोग्यलक्षी सुविधाओं का अभाव है। सरकारी निरीक्षण न के बराबर है। वहां शैक्षिक सुद्रढ़ता कैसे संभव है?
- छात्र–छात्राओं को उचित शिक्षा मुहैया नहीं हो पाती। जो शिक्षक पढ़ाते है वे जनजातीय बोलियों से अनभिज्ञ है। जबकि पाठ्यक्रम गुजराती भाषा में है। यह प्रारंभिक शिक्षा के लिए काफी असमान पद्धति है। शिक्षण के वहीवटदारों एवं शिक्षाशास्त्रीयों को सोचना है।
- प्राथमिक शिक्षा से माध्यमिक स्तर पर RTE-2009 के तहत मुफ्त शिक्षा प्रदान नहीं होती। यहां से 50% से ज़्यादा छात्र–छात्राएं या तो पढ़ाई छोड़ देते है या विद्यालय छोड़ देते है। शासन को इस नीति पर जनजातीय क्षेत्रों को ध्यान में रखकर सोचने की आवश्यकता है।
- जनजातीय क्षेत्रों में JNV एवं KGBV जैसी निवासी शालाएं अधिक खोलने की आवश्यकता है। क्योंकि जवाहर नवोदय विद्यालयों में एक वर्ग में 40 से अधिक छात्रों का प्रवेश नहीं होता। यह एक भद्दा मज़ाक समान है।
- विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं के परिणाम एवं व्यवस्था पर कोई परिवर्तन–योजना नहीं है। पढ़ाई करके छात्र कहां जाते है। क्या करते है? यह जानने 'सलाह एवं मार्गदर्शन केन्द्र' खोलने चाहिए।

- ग्राम स्वराज्य की संस्थाएं, एनजीओ आदि के कार्यो का मूल्यांकन होना चाहिए व कार्यरूपरेखाप सुनिश्चित करनी चाहिए।
- जनजातीय संस्कृति, परंपराएं एवं रीतिरिवाज़ों को शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए
- नई टेक्नॉलाजी एवं आधुनिक शिक्षण के साथ जनजातीय छात्र–छात्राओं को जोड़ना पड़ेगा।
- उचित कार्यवाही हेतु मार्गदर्शन विद्यालयों में ही प्राप्त हो यह सुनिश्चित करे। साथ ही सेल्फ फाईमान्स कॉलेजों एवं शैक्षिक संस्थाओं में आर्थिक रूप से मुक्त करने तथा मुफ्त शिक्षा हेतु कदम उठायें।

जनजातीय समूहों की सर्वांगी उन्नति सुनिश्चित करने के लिए एक सक्षम व्यवस्था का निर्माण करना होगा व चैतसिक विचार–क्रांति द्वारा प्रयास करना होगा।

ગુજરાતનાં આદિગીતોમાં વિસરાતો લોકરાગ

ઈતિહાસનું નિરૂપણ માત્ર રાજા રજવાડાઓ અને રાજ્યસત્તાઓના વિજયોની વાત કે જીવનફલક સાથે કાળક્રમનાં લેખાજોખાં જ નથી, પરંતુ એમાં સમગ્ર સામાજિક પરિવેશનું વિવરણ હોય છે. જે સમયના સામાજિક ઘટનચક્રનું કેન્દ્રબિંદુ જે તે શાસકોના હાથમાં હોય છે, લગભગ તેમની આસપાસ ઈતિહાસ રચાતો રહ્યો છે. એ સમયના વ્યાપક જનસમુદાયની સ્થિતિ, પરંપરાઓ, રીતિરિવાજ અને લોકસંસ્કૃતિ સામે આંખ આડે કાન કરવામાં આવ્યા છે. અલબત્ત એવા સમાજનો લોકરાગ વાચિક પરંપરા સાથે અડીખમ રહી શક્યો છે. જે સમકાલીન ઈતિહાસ લેખન સામે પણ પ્રશ્નાર્થ ઊભા કરે છે. ઈતિહાસ લેખનમાં આભિજાત્ય વર્ગની સંપ્રભુતાને લીધે આદિવાસી સમાજને યોગ્ય ન્યાય મળી શક્યો નથી. એને જનવિરોધી નહીં કહેવાય તો શું કહેવાય ?

ઈતિહાસે સદૈવ વરિષ્ઠ વર્ગોની માનસિકતા સાથે કામ કર્યું છે. પોતાની માટીની ભીનાશ સાચવી પોતાનાં ખૂનપસીનાથી જેઓએ માતૃભૂમિની રક્ષા કરી છે એવા જનજાતિ સમાજની ઘોર ઉપેક્ષા જ થઈ છે. સમાજનાં દબાયેલાં શોષિતજનોએ પોતાના લોકરચના સંસારને હમેશાં સર્જનાત્મકતાથી ધબકતો રાખ્યો છે. લોકને ઉમંગ અને ઉત્સાહથી ભર્યો રાખીને સામંતવાદી અને માલિકીપણા સામે ટકી રહ્યાં છે. ઘણીવાર એવું જોવા મળ્યું છે કે આભિજાત્ય સમાજે સાહિત્ય લેખન અને મીમાંસા કરતી વખતે લોકસંસ્કૃતિને માત્ર મનોરંજન, પ્રદર્શન, કર્મકાંડ અને સામાજિક પ્રસંગોમાં નાચ-ગાન સુધી જ સીમિત રાખી છે. લોકગીતોમાં નિરૂપિત સામાજિક સમરસતા સામેનો વિરોધ અને જાતિદંશની પીડા વ્યક્ત કરતા ભાવોને સિફતથી દૂર રાખ્યા હોય એવું ય બની શકે છે...! કેટલીકવાર લોકસાહિત્યને સંકલિત કરનારાઓએ મૂળલોકની કેટલીક તથ્યહીન બાબતોને સંદર્ભ વગર પણ લઈ લીધી હોય એવું બની શકે.

ગુજરાતમાં વસતા આદિવાસીઓનો રચનાસંસાર અને એમની સંસ્કૃતિ, લોકભાષાઓ વૈવિધ્ય ધરાવે છે. મારા આ પ્રકલ્પના મુખ્ય ઉદ્દેશોમાં આદિવાસી પરંપરામાં વ્યાપ્ત બાળગીતોમાં હાલરડાં, શિશુગીતો, ઉત્સવગીતો, કિશોર- કિશોરીઓનાં ગીતો, યુવામનોભાવનાં ગીતો, રમતગીતો, વિરહનાં ગીતો વગેરેનું ક્ષેત્રકાર્ય દ્વારા અને જાતઅનુભવ દ્વારા સંકલન કરવા પર વિશેષ ભાર મૂક્યો હતો. આદિવાસી સાંસ્કૃતિક લોકગીતોના ભવ્ય વારસાને સાચવવા વિશેનો એક લઘુ પ્રયત્ન હતો. આધુનિકતા અને વૈશ્વિકતાના આ યુગમાં ખૂબ જલ્દીથી દરેક ભાષાઓમાં વ્યાપ્ત લોકસાહિત્ય વિલુપ્ત થવાને આરે છે ત્યારે એના વિશેની ચિંતા પણ હતી.

ગુજરાતમાં લોકસાહિત્ય ક્ષેત્રે જેટલું કામ સૌરાષ્ટ્રમાં થયું છે, એટલું આદિવાસી બહુલ ક્ષેત્રોમાં થયું નથી. ઈસ. 1915 માં પાઠક નાથજી મહેશ્વર ભીલીમાં લોકગીતોનું સંકલન કરે છે. તે પછી ખૂબ મોડેથી એલ ડી જોશી, પદ્મશ્રી ગણેશદેવી, હસુ યાજ્ઞિક, ભગવાનદાસ પટેલ, કાનજીભાઈ પટેલ, લાલચંદ ભીલ, શંકરભાઈ અને રેવાબેન તડવી, માધવ ચૌધરી, શાંતિભાઈ આચાર્ય, ઉત્પલ પટેલ જેવા સંશોધક -સંપાદકોએ આ કાર્યમાં પગપેસારો કર્યો છે, પણ એય પૂરતો નથી. જયંત પાઠક, ચંપૂ વ્યાસ, આનંદ વસાવા, પુંડરીક પવાર, માનસિંહ ચૌધરી, જીતેન્દ્ર વસાવા, ઈસ્માઈલ સંગાડા, વિક્રમ ચૌધરી, રોશન ચૌધરી, ઉમેશ ગામીત, બચુભાઈ વરંડા,

નારણભાઈ, જયંતિ પટેલ, દુર્ગેશ ઉપાધ્યાય, કમલેશ ગાયકવાડ અને બીજા કેટલાક લેખકો અને અભ્યાસુઓએ જે તે પ્રાંતની જનભાષામાં કાર્ય કર્યું છે. ઘણીવાર શોધ-સંકલન માત્ર સંપાદન વિશેષ બની રહ્યું છે. એમાં અન્વેષણ અને ઊંડા ઉતરીને લોકમાનસનાં સર્જનાત્મક પાસાં સાથે વૈજ્ઞાનિક ધોરણે જે અભ્યાસ થવો જોઈએ એ ખૂટે છે. સમગ્રતા જેમ સોરઠલોકબાનીમાં જોવા મળે છે એમ ગુજરાતની લગભગ પચીસેક આદિવાસી ભાષાઓમાં જોઈ શકાતી નથી.

આ રીતે જોઈએ તો લોકસંસારનાં અનેક રસથાળ પૈકી લોકગીત સવિશેષ લોકપ્રિય બની રહ્યું છે. ગુજરાતી આદિલોકગીતોનું ચયન કરતાં જોઈ શકાય છે કે તેમાં ક્ષેત્રવિશેષની સામાજિક, આર્થિક અને ઐતિહાસિક ઘટનાઓ અને સંદર્ભો સહજ રીતે વણાતાં હોય છે. એમાં આમજનતા એટલેકે કહેવાતા અશિક્ષિત લોકનું જ્ઞાન, મર્મ, સમજ, વિચાર, સંવેદના, મોજ-ઉલ્લાસ, વ્યંગ્ય અને સંસ્કાર છુપાયેલાં છે. કુદરતનું મનોરમ વર્ણન હોય કે પૌરાણિક મીથક હોય કે રોજિંદી ઘટનાઓ હોય લોકગીતોમાં એ બધું બરાબર ઝીલાય છે. આપણી પાસે અત્યાર સુધી જે સંકલિત સાહિત્ય છે ફક્ત એના આધારે કહી શકાય કે એ આમ આદિવાસી લોકનું સર્જન કોઈ પણ ભાષાના સમૃધ્ધ સાહિત્ય કરતાં જરાપણ ઓછું નથી. આ દિશામાં ખાસ કરીને લોકગીતોને સંગ્રહ કરીને લોકભાષાઓને બચાવી લેવાય તો ઘણું છે. લોકસંસ્કૃતિના રક્ષણના નામે એનજીઓ કે અકાદમીઓ ખોલીને કામ કરતા વિદ્વાનો લોકસંસ્કૃતિ કરતાં કીર્તિ અને લોકના નામે યશ ખાટી જવાની મનોવૃત્તિ વધુ રાખે છે. કહેવાતા સંશોધકો એને ગ્રામ્ય અને ગમારોનું સાહિત્ય ગણે છે.

ભારત અને ગુજરાતનાં આદિવાસી લોકસાહિત્યને સંપાદન, સંગૃહીત કરવાની શરૂઆત પહેલવહેલાં અંગ્રેજોએ જ કરી હતી. જેમ્સ ટેડ(1829) 'એનલ્સ એન્ડ એક્ટિવિટીસ ઑફ રાજસ્થાન' નામક પ્રસિદ્ધ લોકસાહિત્યનો ગ્રંથ પ્રગટ કરે છે. તે ઉપરાંત જે.એબટ, રેવરેન્ડ, એસ. હિલ્પસ, સર રિચર્ડ ટેંપુલ, મિસ ફ્રેસર જેવા અંગ્રેજ સંશોધકોએ ઉમદા કાર્ય કર્યું હતું. વર્ષ 1865 માં સર ચાર્લ્સ ઈલિયટે ભારતીય લોકભાષાઓમાં 'આલ્હા ખંડ'' સંપાદિત કર્યો હતો. 1871માં સી.આઈ.ગોવર 'ફોક સોંગ્સ ઑફ સદર્ન ઈન્ડિયા' પ્રકાશિત કરે છે. 1875માં વિલિયમ વોટર્ફિલ્ડે એનો અનુવાદ 'ધ લે ઑફ આલ્હા' નામે કર્યો હતો. સન 1884માં સર ટેમ્પલે 'લીજેંડ્સ ઑફ પંજાબ' નામે લોકસાહિત્યનો ગ્રંથ પ્રકાશિત કર્યો હતો. કાળાંતરે ક્ષિતિમોહન સેન, ઝવેરચંદ મેઘાણી, રણજીતરાય મેહતા, તારાચંદ ઓઝા જેવા વિદ્વાનોએ ખાસ કરીને લોકગીતોમાં પોતપોતાની ભાષામાં મહત્વપૂર્ણ યોગદાન આપ્યું હતું. વીસમી સદીમાં દેવેન્દ્ર સત્યાર્થીએ પંજાબથી લઈને છેક શ્રીલંકા સુધીની યાત્રા કરીને લોકગીતોના સંપાદન કાર્યમાં ઉત્તમ ભૂમિકા ભજવી હતી. અગાઉ ઉલ્લેખ કર્યા અનુસાર ગુજરાતમાં ઝવેરચંદ મેઘાણી સોરઠી લોકબાનીમાં સવિશેષ સંશોધન સંપાદન કરે છે. એ અરસામાં ગુજરાતનાં આદિવાસી ક્ષેત્રોમાં નહિવત કામ જોવા મળે છે. છેક ઓગણીસમી સદીના આરંભમાં ઠક્કરબાપા અને ડાહ્યાભાઈના પ્રયત્નોથી ભીલી, નાયક, રાઠવી, બારૈયા, ડુંગરીભીલી વગેરે જનભાષાઓમાં વ્યાપ્ત લોકગીતોનું છૂટક સંકલન થાય છે. પણ એ સર્વોદય અને જનજાગરણના સંદર્ભે થતું સામાન્ય કાર્ય ગણી શકાય. લોકસાહિત્ય ક્ષેત્રે અઢળક સંપદા હતી પણ વૈજ્ઞાનિક રીતે અને સમગ્રતયા સંકલન કરવાની સમજ કોઈને નહોતી. ભારતીય ભાષા શોધ કેન્દ્ર, વડોદરા અને આદિવાસી અકાદમી, તેજગઢના નેજા હેઠળ ભારત

અને ગુજરાતની સેંકડો ભાષાઓ, બોલીઓ અને લોકસાહિત્યમાં નોંધપાત્ર સંશોધન, સંકલન અને પ્રકાશન થયું છે. પરંતુ એ પ્રકાશિત થયેલ સાહિત્યનું અવલોકન અને વિશ્લેષણ યોગ્ય રીતે થયું નથી. એનો સ્વતંત્ર રીતે કોઈએ અભ્યાસ કર્યો નથી.

ગુજરાતની લગભગ પચીસ આદિવાસી જનભાષાઓમાં વ્યાપ્ત અઢળક લોકગીતો પૈકી અમે નવ ભાષાને આવરી શક્યા છીએ. ચૌધરી, ગામીત, દેહવાલી(વસાવા), રાઠવી, ઢોડિયા, ભીલી, ગરાસિયા, ડુંગરીભીલી અને વસાવી. એય સાગરમાં એક બુંદ જેવું સંકલનકાર્ય ગણી શકાય, છતાં આટલી ભાષાનાં લોકગીતોને એક મંચ પર મૂકીને તુલનાત્મક રીતે સમજવાનો એક પ્રયાસ છે. મૂળ શૈક્ષણિક સંદર્ભ પેટે શરૂ કરેલ આ પ્રોજેકટ ઘણી વિશાળ દ્રષ્ટિ આપી ગયો છે. ગુજરાતી અને સોરઠી બાળગીતોના વિરાટ ફલક ઉપર ક્યાંય આદિવાસી ભાષાનાં બાળગીતો સાંભળ્યાં છે? ગુજરાતીનનાં પાઠ્યપુસ્તકો કે વિનયન વિધ્યાશાખામાં ચાલતા અનેક અભ્યાસક્રમોમાં આદિરાગનાં પુસ્તકો ક્યાંય જોવા મળતાં નથી. એ આપણી કમનસીબી છે.

લોકરાગ એ શ્રમ અને સરળતા સાથે જોડાયેલો સંપ્રત્યય છે. હિન્દીમાં આચાર્ય રામનરેશ અને તેમના પક્ષધર વિદ્વાનો ગ્રામીણ સમુદાયને જ 'લોક' માને છે. મારી સમજ પ્રમાણે કહીએ તો 'લોક' એ શ્રમકાર્ય અને આનંદ-મસ્તી સાથે જોડાયેલો સર્વસાધારણ વર્ગ છે. જેઓ વનાંચલ અને ગ્રામપરિવેશમાં ઝાઝા રહે છે. લોક પાસે જ્ઞાન અને વિજ્ઞાનના શ્રોત કે સૈદ્ધાંતિક ગ્રંથો નથી. જીવનની વિવિધ સ્થિતિ-પરિસ્થિતિઓમાં પ્રકૃતિ-કુદરત તથા પારંપરિક ઋતુઓ અને સ્વનિર્મિત ઉત્સવો સાથેનો અદ્ભુત સૌહાર્દ, વિનય અને જીવનગીતોની ભવ્ય અનુભૂતિ છે. ખાસ કરીને આદિરાગના, વાચિક પરંપરાનાં બાળભોગ્ય લોકગીતો સંપાદિત કરવાનાં હોય તે સૌથી કઠિન બાબત છે. દરેક જનભાષા એની પોતીકી ધારા કંડારે છે. મારે તો એને ગુજરાતી લિપીની સાપેક્ષ અર્થાનુભવને આત્મસાત કરવાનો છે.

આદિગીતોનું રસદર્શન:

આદિવાસી પરંપરામાં બાળગીતો ખૂબ ઓછાં મળી આવે છે. એના એક કારણ તરીકે જનજાતિઓનું જીવનયાપન અર્થે સતત વનગમન, ખેતીકામ અને પશુપાલન જેવા વ્યવસાયોમાં ડૂબ્યા રહેવું હશે. બાળકનાં માતા-પિતા બાળકોને દાદા,દાદી કે વડીલો પાસે મૂકી જાય અથવા જ્યાં કામ કરતાં હોય ત્યાં જ ઝોળી કે કપડાં બાંધીને બાળકને સંભાળતાં હોય ત્યાં ગીત સર્જનને ક્યાં અવકાશ મળે? બાળગીતો હશે તોય તે હવે આદિરંગનાં જ છે એની શી ખાતરી? સતત શહેરીકરણનો અનુરાગ અને પશ્ચિમી અનુકરણથી જનપદીય લોકસર્જન વિલય થવાને આરે છે, છતાં હજી સમય છે. આ ભવ્ય લોકસંપદાને સાચવી લેવા આપણે કઈંક નક્કર કરવું રહ્યું:

- ડેટકમાતા પાણી દે પાણી દે....!

  આંગણિયામાં ઠીમકું, વહુ આવી સમકું,

  વાડે વાડે હાપ જાય, ભાભી કે માર બાપ જાય.

ખાંડણિયામ કોદરા, વહુ વીણે સોતરાં.(ભીલી) આવાં કેટલાંય જોડકણાં જેવી બાળરચનાઓમાં પણ વરસાદને ઈજન આપવાની વાત થતી મેં સાંભળી છે. આમ પણ શિશુગીતો ગાયન અને લય પર આધારિત છે.

- હાલી હા.... હાલી....હા.... મારી બાયાણે(દીકરી/દીકરો) દાદલી(દાદી) હાલી નાખે....રા...હા...આ..હા... ચૌધરીભાષાનાં આ સ્વર-ધ્વનિઓને સામાન્ય રીતે સમજી ના શકાય, ફક્ત ગણગણવાનાં જ હોય. એવું જ ઢોડિયા ભાષામાં હાલરડું જુઓ,

○ આ..આ..આ...લી...

આયતી(નાની) કોલી(શિયાળ)આવે તે રમાડી જાય,

વાડીમાનો ઢેંચકો(કાળિયો કોશી) હુવાડી જાય....

○ ડો...ડો...બાયુ ..ડો...ડો...

હુવી જા વા...બાયુ..ડો..ડો...

વાગલો(વાઘ) આવેહે વા ..બાયુ ડો..ડો...

○ કાંહા રોડેરા ડીકા, કાંહા રોડેરા..ને..
હુવીજા રોડેહેરા ...ડીકા... હુવી કાય જાજેરા...(ગામીત)

આવાં હાલરડાં હજી મળી આવે છે. કોઈ એક શબ્દ કે ધ્વનિને લઈને એકસમાન ગતિએ ચાલતું સંગીત એ હાલરડાંનો પ્રાણ છે. એમાં મમતા અને પ્રેમનો આલ્લાદ છે. ગત્યાત્મક આવર્તન શિશુને મીઠી ઊંઘ આપી દે છે. એ રીતે પહેલાં શિશુગીતોનું સર્જન માતૃહૃદયમાં થાય છે. માતા, દાદી, નાની, ફોઈ, બહેન વગેરે નારીપુંજ શિશુગીતો રૂપે સૌ પ્રથમ લોકનાં સર્જનહારાં ગણાય.

બાળકોને જન્મથી જ ઋતુઓની સમજ મળે એ માટે આદિલોકમાં કુદરત, વનંચલ અને પ્રકૃતિની ઋતુવ્યવસ્થાને લઈને અનેક લોકગીતો મળી આવે છે:

-બાંગરા હીંગ બા ટોહોળી,

પોપટ ફોલી ખાયવા...૨

પોપાટા ચાંચ બા રંગેલી...વ્યારાવાળા બા રંગા રંગેલી....! (ગામીત)

- વરતી પીપેરી તારાં વરતેલાં છાંયો,

તાં ઘડી ઊભા રીજો રે લોલ.. (રાઠવી)

- કઈ લીંદરામાં હુઈ ગઈ મારી વીજળી,

બારે ખંડમાં હુઈ જયો બાબો મેગલો... (ભીલી)

- લીલાં લેમડ હુકયાં ભાયા લીમજી...

પડી ગિયો ડંડુકાળ ભાયા લીમજી...(ભીલી) આ ઋતુગીતોમાં દુષ્કાળની વાત અને વરસાદ આવવાની એંધાણી વ્યક્ત થઈ છે. તો જંગલ અને જીવનને, પ્રકૃતિરાગને ઝાડ, પાર્ણો, છાંયો અને પશુપંખીઓ સાથે ગૂંથી લીધાં છે. આવું સ્વયંભુ સર્જન શિષ્ટભાષામાં ક્યાંથી મળી શક્યું છે! આવાં અનેક દ્રષ્ટાંતો છે. અહીં ફક્ત આચમન કર્યું છે. એવી જ રીતે યુવામનોભાવને દર્શાવતી લોકરચનાઓ પણ મળી આવે છે:

- સેલિયો(છોકરો) ચાલે જોરે જોરે...ઘેલુડી(છોકરી)ચાલે મોરે મોરે...

ચાલરા સેલિયા ઝાડ્યેમાં જાઉં,

કાનગલોંડે(કંદમૂળ)ખણીને ખાઉં... (ઢોડિયા)

- સુરત જજે મને બોલીતો જજે રા...

સાતાનો રુયો લાવજે, કાંગરાલો વેણોં લાવજે.

સુરતે જજે મને બોલીતો જાજે... (દેહવાલી/વસાવા)

- ડોબાહામાં જાહું રા બેનાં, ડોબાહમાં જાહું યે...

ડોબાહામાં જાહું રા ફાયા, ડોબાહમાં જાહું રા.... (ચૌધરી)

- ડામોર સાકળીયા સોરાનો ડામોર વોઈ રે....ડામોર બડો સોબિતો

ડામોર તારમારે નજરું એકે રે.. ડામોર બડો સોબિતો... (ભીલી)

- ખાખરા ફૂલેં ગોગરી(ખરી પડવું) બા પોડ્યેં,

બોટકાળી(કુંવારી)ઈસ્તિ(વિણતી)યેય,...૨

બોટકાળીએ ખોળો દોઓબાઈ પોડયો,

ગોવાળિયો(કુંવારો)ટુંગતો(લપાતો) યેય....૨ (ગામીત)

આ બધાં લોકગીતોમાં નિર્દોષ નેહની અને રમુજ સાથે મસ્તીની વાત થઈ છે. જનજાતિઓમાં યુવાહૃદયોને પૂરતી મોકળાશ અને અવસર મળે છે. એ મેળાઓ હોય, જંગલ હોય, હાટબજાર હોય કે ખેત મજૂરી હોય...એક યુવાન અને એક યુવતી પોતાનાં સાંસારિક જીવનની શરૂઆત કરતાં પહેલાં એકબીજાનાં રુચિ-રસ અને વિચારોને જાણી શકે એવી વ્યવસ્થા આદિવાસી સમાજમાં જ જોઈ શકાય.. જીવનમાં કોઈ

બિનજરૂરી બોઝ કે પંચાત વિના આનંદથી પ્રકૃતિનાં ખોળે જીવવું આદિસંસ્કૃતિ એમનાં ગીતોમાં શીખવી જાય છે.

આદિરાગમાં ઉત્સવગીતો, દેવપૂજાનાં ગીતો, કથાગીતો, મિથકગીતો, લગ્નગીતો, મેળા અને હોળીનાં ગીતો, જાતર અને ગોંદરાનાં ગીતો, મૃત્યુગીતો, ધાર્મિક કર્મકાંડનાં ગીતો, મંડળીનાં ગીતો, રમતગીતો, ઉખાણાં, કહેવતો, રૂઢિપ્રયોગો, આખ્યાનગીતો એમ અઢળક લોકસાહિત્ય ભર્યું છે...પણ હવે સાચી કસોટી થઈ રહી છે...!! આ બધું મોટાભાગે વાચિક અને મૌખિક પરંપરામાં જ રહ્યું છે. નોતરાં એટલે લગ્નનાં નિમંત્રણ પર આવતાં સબંધીઓ આખે રસ્તે ગીત ગાતાં આવતાં હોય એવું દ્રશ્ય હવે ક્યાં જોવા મળે છે,

-આંબો મોરયો મવડો મોરયો ઝાપે મોર બોલ્યો રે...

નીકળ રે માર લાડા ભાણેજ ઝાપે મોર બોલ્યો રે...! (ભીલી) લગ્ન વખતે સહેલીઓ કન્યાને રોવડાવવા ગીત ગાય છે એ જુઓ:

- તારા બાપાના ધંધા કોણ કરહે બની..

તારી માતાના કામે કોણ કરહે બની...(ભીલી)..આ ગીત સાંભળતાં જ બહેની પોક મૂકે એવું સર્જન લોકરંગનો અજબ મિજાજ છે. આવાં ગીતોમાં આપણી અસ્મિતાને વર્ણવતાં ગીતો પણ મળી આવે છે. અંગ્રેજો સામેની લડત હોય કે પંચમહાલના માનગઢની ઐતિહાસિક ગુરૂગોવિંદસિંહની વાત હોય એને લગતાં ગીતો પણ મળી આવે છે:

- માનગઢ મારી ધૂણી હે, બેણેવર માર મંદરા હે,

ભૂરેટિયા(અંગેજ) હટ જા ની માનું રે ની માનું...!(ભીલી)

આજે લોકનું અસ્તિત્વ ધૂંધળું જણાઈ રહ્યું છે. બજારવાદ અને ટેક્નોલોજીના યુગમાં શહેરીકરણ અધધ વધી રહ્યું છે. વિકાસને નામે આદિજાતિઓનાં જંગલો અને જમીનોનું નિકંદન થઈ રહ્યું છે. તથાકથિત સભ્ય સમાજે આદિવાસીઓને અસભ્ય ઘોષિત કરી દીધા છે. ભારતીયતાને નામે આજની કોન્વેંટ-અંગ્રેજીમાં ભણતાં ભાવિ નાગરિકો જ કહી રહ્યા છે કે આ કઈ બલાનું નામ છે? પરંપરાગત લોકરાગની જગ્યાએ રૉક અને પૉપ સંગીત, પાશ્ચાત્ય ધોંધાટિયું સંગીત અને બોલિવૂડની ફુહડ રંગસંસ્કૃતિ સમગ્ર જનજાતિઓ પર હાવી થતી જાય છે. એથી કરીને આદિવાસી લોકરાગ વિસરાઈ જવાના આરે ઊભો છે..! મે કરેલા કેટલાક નિષ્કર્ષ આ મુજબ છે:

-આજે મૂળ લોકગીતો મળી શકતાં નથી કારણકે વડીલ અને લોકનાં જાણતલ વાહકો હવે ઓછા રહ્યા છે, જેઓની પાસે લોકગીતોની મૌખિક સંપત્તિ હૈયાવગી હતી.

- દરેક આદિભાષાનાં લોકગીતોમાં ભાષા, અર્થ, અભિવ્યકિત અને લય-સંગીતમાં ધરમૂળથી પરિવર્તન જોવા મળે છે. તહેવારો જેવા કે હોળી-ધૂળેટીના ઉત્સવો હવે ગ્રામીણ ક્ષેત્રો પૂરતા જ રહ્યા છે, જ્યારે શહેરમાં એનું મહત્વ નથી રહ્યું.

- આદિવાસી લોકગીતો, નૃત્યો અને જીવન વ્યવહારમાં આમૂલ પરિવર્તન આવ્યું છે. હવે મૂળ રંગ બદલાઈ ગયો છે. એમાં નાવીન્ય લાવવા માટે મૂળ સંગીત અને નૃત્યોનાં સાધનોમાં બદલાવ કરીને આધુનિક સાધનો વપરાય છે. હવે હાટ અને મેળાનું સાંસ્કુતિક મૂલ્ય રહ્યું નથી.

- લોકગીતો છે પણ એય અધકચરી જનભાષામાં ટેક્નોલોજીના ફુહડ મિશ્રણ- વાળાં, દેશી ભાષામાં શિષ્ટનું મિશ્રણ કરેલાં અને કૃત્રિમતાથી ભરેલાં હોય છે. આદિવાસી લોકગીતોને બિભત્સ અર્થો અને નફ્ફટાઈથી રજૂ કરીને સાઉન્ડ ઈફેક્ટ દ્વારા આર્થિક ઉપાર્જન કરવાના ધંધા હદથી વધુ થાય છે. આ કારણે મૂળ લોકગીતોને નુકસાન પહોંચ્યું છે.

- શિક્ષણ સંસ્થાઓ, નીતિનિર્ધારકો અને પાઠ્યક્રમ રચનાકારોએ આદિગીતો અને આદિસંસ્કૃતિને ક્યારેય મહત્વ નથી આપ્યું, જેથી ભવ્ય ધરોહર અને લોકસંસ્કૃતિને ખોવા તરફ આપણે જઈ રહ્યા છીએ.

આમ આદિવાસી લોકગીતો અને સંસ્કૃતિ તરફ પ્રારંભિક શિક્ષણ પ્રક્રિયાથી જ ધ્યાન આપવું પડશે. એ માટે અંગ્રેજી અને ટેક્નોલોજીના યુગમાં બહુભાષિક અભિગમ કેળવવો અતિ આવશ્યક છે. મારું આ લઘુશોધ કાર્ય આપ સહુને મદદરૂપ બનશે...નો આશાવાદ રાખું વિરમું છું.

ડો.સુરેશ મકવાણા

સહાયક પ્રાધ્યાપક,(ગુજરાતી)

ક્ષેત્રિય શિક્ષણ સંસ્થાન,(એનસીઈઆરટી), ભોપાલ

सलाहकार-स्त्रोत व्यक्तियों एवं संपादक मंडल की सूची

1. प्रो. एन. प्रधान, प्राचार्य, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल।
2. प्रो. निधि तिवारी, अध्यक्ष, भाषा एवं विस्तार शिक्षा विभाग, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल।
3. श्री वसंत निरगुणे, संशोधक, जनजातीय संग्रहालय, भोपाल।
4. डॉ. राधवजी माधड, लेखक, संशोधक, जी.सी.ई.आर.टी., गुजरात।
5. डॉ. रोशन चौधरी, चौधरी भाषा के संशोधक, संपादक।
6. श्री मौलिक श्रोत्रिय, भीली भाषा के संशोधक, संपादक।
7. डॉ. उमेश गामीत, गावीत भाषा के संशोधक, संपादक।
8. श्री अरविंद पटेल, ढोडिया भाषा के संशोधक, संपादक।
9. श्री नेवजीभाई डाभी, गरासीय भाषा के संशोधक, संपादक।
10. डॉ. राजेश राठवा, राठवी भाषा के संशोधक, संपादक।
11. श्रीमती गायत्री आर. वसावा, वसावी भाषा के संशोधक, संपादक।
12. डॉ. सुधाकर वाडेकर, सह–अध्यापक, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल।
13. डॉ. कानजीभाई पटेल, निदेशक, जनजातीय अकादमी, तेजगढ़, गुजरात।
14. प्रो. डॉ. गणेश देवी, निदेशक, भाषा शोध केन्द्र, वड़ोदरा।
15. डॉ. सुरेश मकवाना, कार्यक्रम समन्वयक, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल।

फोटो गैलरी

કાર્યાલય
ઓફિસ

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल